International Journal of Research
Special Issue for UGC Approved Journal-Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 05 Issue 02
January 2018

सुमित्रा नन्दन पंत जन–समाज के कवि

धर्मबीर
पीएच.डी. (हिन्दी)
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
पंजीकरण संख्या : 05–BB–544
Email : dslangyan@gmail.com
फोन नं0 : 9050235589

कविवर पंत व्यक्ति विशेष के हिमायती न होकर मानव समाज के हिमायती हैं। उन्हें जीवन के किसी भी क्षेत्र में व्यक्तिवाद उचित नहीं लगता। उन्होंने इस तथ्य का पक्ष लिया है कि व्यक्ति की पूर्णता उसके समाज तथा मानवता के साथ रहने में होती है।

अतः उन्होंने प्रत्येक प्रकार की व्यक्तिगत जीवन–साधना का विरोध किया है। वे धरा पर सामूहिक जीवन का अस्तित्व चाहते हैं :–

''सार्थक हो भू पर सामूहिक जीवन।''[1]

सामूहिक जीवन की सार्थकता तभी है, जब उसके प्रति प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में अटूट श्रद्धा हो। व्यक्तिगत जीवन साधना करने वाला व्यक्ति इस दिशा में पीछे ही रह जाता है, क्योंकि ऐसे व्यक्ति का व्यक्तिगत स्तर तो उभर आता है, परन्तु मानवतावादी स्तर फीका पड़ जाता है। इसके फलस्वरूप वह समाज का निषेध करता है, जिसे स्वस्थ दृष्टि नहीं कहा जा सकता है। पन्त जी की धारणा है कि व्यक्ति विशेष की मुक्ति के प्रयास में उसका जातीय गौरव समाप्तप्रायः हो जाता है, जो मानव के लिए लज्जा की बात है। उनका कथन है –

''व्यक्ति मुक्ति के सर्पपाश में फंसकर

कर्म पंगु मर गया जातिगत जीवन''[2]

कविवर पंत सर्वमुक्ति के पक्ष में हैं उसी को वे वास्तविक मुक्ति मानते हैं। उनकी दृष्टि में व्यक्तिगत नाम की कोई धारणा नहीं है। उसकी अन्तर्भक्ति तो सामूहिकता में ही हो जाती है–

''सर्वमुक्ति हो मुक्ति तत्व अब

सामूहिकता की निजत्व अब''[3]

कवि पंत व्यक्ति की उस राग–वृत्ति का भी विरोध करते हैं, जो पिछले युगों के संस्कारों से बद्ध है। उनका विचार है कि यह राग वृत्ति मानव में स्वार्थ तथा संकीर्णता उत्पन्न कर देती है जिससे वह व्यक्तिगत जीवन–साधना में प्रवृत्त हो जाता है और मानव–समाज का हित नहीं कर पाता है। वे इसे विरोधी तत्व मानते हैं।

यद्यपि पन्त जी के कुछ आलोचक उन्हें केवल वैयक्तिकता की भाव में ही खड़ा पाते हैं और उन्हें मानववादी कवि के रूप में मान्यता देने में झिझकते हैं, परन्तु अपनी संकीर्ण विचारधारा के आधार पर उनका यह दृष्टिकोण एकांगी ही रह जाता है।

पंत एक विचारक कवि होने के साथ ही जनता के हितैषी भी है तथा जनमानस के समक्ष अपने सौन्दर्यात्मक विचार प्रस्तुत करते हैं। वे जन–समाज के बीच से बोलने वाले मानव हैं। उससे भागकर किसी निर्जन विपिन में बैठकर माइक्रोवेव द्वारा संदेश भेजने वाले एकान्त प्रेमी नहीं है। उन्होंने जो कुछ कहा है, वह समाज को लेकर कहा गया है और उसमें किसी एक व्यक्ति की जीवनचर्या या व्यक्तिगत जीवन का बखान नहीं है।

कवि पन्त ने उन दार्शनिकों का विरोध किया है, जिन्होंने वैयाक्तिक मुक्ति अथवा व्यक्तिगत जीवन साधना का सन्देश देकर सामाजिक जीवन की विश्रृंखलित करने की त्रुटि की है। उन्हें इस बात को पाकर आश्चर्य होता है कि ऐसे दार्शनिकों की विचारधारा का अनुगमन करने पर मानव अपने सामाजिक जीवन के विस्मृत यथार्थों को वैयक्तिक मूल्यों में सीमित कर देता है–

''अति वैयक्ति मूल्यों में

कब सीमित गया विधि प्रेरित

सामूहिक जन जीवन का विस्मृत यथार्थ श्रम संचित।''[4]

पंत जी ने व्यक्तिगत जीवन–साधना के विरोध में विकसित व्यक्तिवाद के महत्व को विकसित समाजवाद की पृष्ठभूमि में स्वीकार किया है। वे प्रथमतः मानव की व्यक्ति–सत्ता को जन–मानस के लिए समर्पित करते हैं, जिससे वह सामूहिक मानव बन कर युगानुकूल मानवी संस्कृति का निर्माण कर सकेगा। उनका प्रस्ताव है–

''क्षुद्र व्यक्ति को विकसित होकर

बनवा अब जन–मानव

सामूहिक मानव को निर्मित

करनी भव संस्कृति नव।''[5]

इस प्रस्ताव का समर्थन न होने पर उन्हें मानव के पशुत्व की दशा में पहुंच जाने का भय है। उनका कथन है कि ''उनको काव्य में विकसित व्यक्तिवाद के साथ ही विकसित समाजवाद को विशेष महत्व दिया है। जिससे देव बनने के एकांगी प्रयत्न में हम मनुष्यत्व से विरक्त होकर सामाजिक जीवन में पशुओं से भी नीचे गिर जाएं।''[6]

वे मानव को जन–समाज के परिप्रेक्ष्य में देखते हैं। उन्होने किसी व्यक्ति विशेष के हृदय के सुख–दुख के राग में डूबना नहीं सीखा है, वरन् सामान्य मानव व मानव–समाज के हृदय को ढूंढ़ा है।

संस्कृत, सुन्दर तथा मानवोचित सामाजिक जीवन का स्वप्न लेकर पन्त धरती पर ऐसे सामाजिक जीवन का पक्ष ग्रहण करते हैं, जिसमें प्रत्येक मानव का सम्यक् व सुन्दर समायोजन हो सके। उसे समाज का अंग न बनाने में किसी बाधा का सामना न करना पड़े तथा वह

सर्वथा उसके योग्य हो। सामाजिक जीवन का ऐसा रूप तभी बन सकता है, जबकि वह भावना के धरातल पर सुन्दर और व्यवहार के धरातल पर संस्कृत हो। पन्त जी ऐसे सामाजिक जीवन के बारे में सतत् चिन्तनरत् रहे हैं।

कवि पंत पुराने समाज तथा मानव–जीवन की धारणाओं एव व्यवहारों में परिवर्तन करने का पक्ष लेते हैं। वे इस धरा में स्वर्ग बसाने का स्वप्न देखते हैं। इसे वे युग–चेतना का प्रतिफलन मानते हैं।

उनका विचार है कि ''आज के मानव जीवन की आकांक्षा है कि उसके लिए नए स्वर्ग की रचना हो, जहाँ वह सुख योग कर सके। मानव–जीवन एवं समाज का रूपान्तर करने तथा पृथ्वी पर मानव–स्वर्ग बसाने का वस्तु स्वप्न नवीन युग की भावात्मक देन है।[7] यहां मानव–स्वर्ग शब्द आदर्श, संस्कृत, सुन्दर तथा मानवोचित सामाजिक जीवन का प्रतीक है, जिसमें मानव की वाणी भाव एवं कर्मों में एकत्व एवं सौन्दर्य हो।

कविवर पन्त ऐसे सामाजिक जीवन के पक्ष में हैं, जिसमे प्रत्येक मानव को सौन्दर्य के बीच निवास करने का सुअवसर प्राप्त हो सके। यह सौन्दर्य मानव के सामाजिक पर्यावरण में ही न होकर उसके अपने व्यक्तित्व से भी होना चाहिए। पन्त जी ऐसा चाहते हैं उनकी कामना है –

''संस्कृत वाणी, भाव–कर्म संस्कृत मन,

सुन्दर हो जन–वास, वसन, सुन्दर तन।''[8]

पन्त जी एक सौन्दर्यवादी कवि हैं। जब उन्होंने मानव को असुन्दर स्थितियों तथा मान्यताओं का शिकार बना हुआ देखा तो उनके सौन्दर्यात्मक काव्य ने उसकी सुन्दरता के लिए गत युग का पतझड़ करना चाहा। तब उन्होंने मानव–जीवन के सौन्दर्य के इस चित्र को प्रस्तुत किया–

''सुन्दर ही पावन, संस्कृत ही पावन निश्चय,

सुन्दर हो भू का मुख, संस्कृत जीवन–संचय।

सुन्दर भव–आलय, संस्कृत जड़–चेतन समुदाय,

सुन्दर नव–मानव, संस्कृत भव–मानवको जय।।''[9]

कवि पंत के लिए स्वार्थ तथा निजत्व की भावनाओं से युक्त समाज नगण्य है। वे ऐसी संकीर्ण मानव–चेतना के लिए असन्तोष व्यक्त करते हैं, जिससे सामाजिक जीवन में सौष्ठव लाने में किसी प्रकार की सहायता प्राप्त न होती हो। उन्हें तो ऐसा समाज चाहिए, जिसमें मानव उचित रूप से अपने जीवन में सौष्ठव और सांख्य की स्थापना कर सके।

ऐसे मानवोचित समाज का चित्र प्रस्तुत करने के लिए वे सदैव प्रयत्नशील रहे हैं। उन्होंने अपने परिवेश की सामाजिक चेतना से असन्तुष्ट होकर एक अधिक संस्कृत, सुन्दर एवं मानवोचित सामाजिक जीवन का स्वप्न प्रस्तुत किया है।

पन्त जी की 'ज्योत्स्ना' अगामी मानवोचित समाज की एक रंगीन कल्पना की है, जिसमें उन्होंने अपनी जीवन–कामना तथा राग–भावना को एक व्यापक अवैयक्तिक तथा मानवीय धरातल पर अभिव्यक्ति करने की चेष्टा की है। पन्त जी का मानवतावादी अन्तःस्थल इस बात के लिए चिन्तित है कि मानव किस प्रकार अपने समाज को नये जीवन–सौन्दर्य को ग्रहण करने के योग्य बनाए। इस संबंध में वे मानव के समक्ष अनेक रंगीन सुझाव रखते हैं। पन्त जी स्वतन्त्र तथा समानधिकारी जन–समाज की आवश्यकता पर बल देते हैं। कविवर पन्त की विचारधारा है कि मानव के विकासशील जीवन के लिए एक ऐसे समाज की आधारशिला होनी चाहिए जिसमें प्रत्येक स्तर में समानता हो। यह समानता रहन–सहन के स्तर–भोजन, वस्त्र तथा आवास से लेकर समस्त अधिकारों तक सब क्षेत्र में होनी चाहिए।

पन्त जी के विचार में मानव के विकासशील जीवन का आधार समानाधिकारी स्वतन्त्र जन–समाज होना चाहिए उनमें ऐसी सभ्यता नहीं होनी चाहिए जिसमें असमानता का राज्य हो और जो मानव–समाज में समता की स्थापना न कर सके। वे एक ऐसी मानव–संस्कृति को उपस्थित करने की अभिलाषा करते हैं, जिसमें धनी–निर्धन, शासक और शासित, संस्कृत और

प्राकृत को लेकर किसी प्रकार की असमानता न हो, वरन् सभी समान हो, उनके विचारानुसार युगीन संस्कृति के प्रभाव की समानता में उनका कथन है–

''भव संस्कृति की नव प्रतिमा

निर्धन समृद्ध, शासक–शासित

तुमको समान संस्कृत–प्राकृत।''[10]

पन्त जी का काव्य–नायक प्रत्येक मानव को समान अधिकार देता है। वह चाहता है कि उसके तथा समाज के हितों में कोई टकराव न हो। उसके माध्यम से पन्त जी का मानवतावादी दृष्टिकोण अभिव्यक्त होता है, जो समानता के सिद्धान्त पर आधारित है तथा जिसमें संघर्ष का नाम भी नहीं है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची :–

1. लेकायतन : पूर्व स्मृति, पृ0 35
2. वहीं, पृ0 20
3. युगवाणी : युगवाणी, पृ0 20
4. लोकायतन : संस्कृति द्वारा, पृ0 15
5. पन्त ग्रन्थावली 2 : युगवाणी : गंगा का प्रभाव, पृ0 20
6. वहीं, पृ0 78–79
7. पन्त ग्रन्थावली 2, युगवाणी, दृष्टिपात, पृ0 78
8. युगवाणी : नव संस्कृति, पृ0 24
9. पन्त ग्रन्थावली 2, युगवाणी, भूत जगत, पृ0 99
10. युगवाणी, भव संस्कृति, पृ0 76